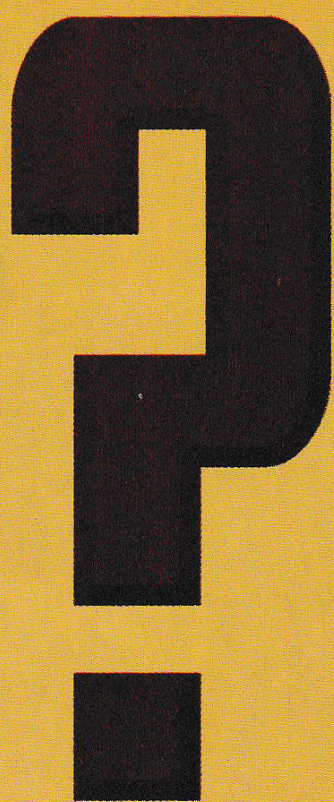


साल्लोखना / संथाए

क्या आत्महत्या है



मुनि प्रणम्यसागर

सल्लेखना/संथारा
क्या आत्महत्या है
?

मुनि प्रणम्यसागर



भारतीय ज्ञानपीठ

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला : हिन्दी ग्रन्थांक 58

आशीर्वाद : आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

क्या सल्लेखना/संधारा आत्महत्या है ?
मुनि प्रणम्यसागर

ISBN 978-93-263-5433-2

प्रकाशक :

भारतीय ज्ञानपीठ

18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड
नयी दिल्ली-110 003

मुद्रक : चार दिशाएँ प्रिंटर्स, नोएडा

आवरण-चित्र : चन्द्रकान्त शर्मा

पहला संस्करण : 2015

मूल्य : 35 रुपये

© भारतीय ज्ञानपीठ

Published by

Bharatiya Jnanpith

18, Institutional Area, Lodi Road

New Delhi-110 003

e-mail : jnanpith@satyam.net.in, sales@jnanpith.net

website : www.jnanpith.net

First Edition : 2015

Price : Rs. 35

अनुक्रमणिका

1. जीवन का अन्त सुधर सकता है प्रारम्भ नहीं	7
2. सल्लेखना किसके लिए?	9
3. सल्लेखना का मनोविज्ञान	12
4. सल्लेखना या समाधिमरण - इच्छामृत्यु या सतीप्रथा नहीं है	15
5. समाधिमरण की संक्षिप्त शारीरिक वैज्ञानिक विधि	19
6. समाधिमरण साधना के शिखर का कलश	20
7. समाधिमरण के लिए ही साधु जीवन जीता है	21
8. समाधिमरण साधने के लिए महान् ग्रन्थ 'भगवती आराधना'	23
9. मोक्ष प्राप्ति के लिए सल्लेखना/संथारा एक अनिवार्यता	25
10. समाधिमरण की अवधारण अनादिनिध है	26
11. पशु भी करते हैं समाधिमरण	27
12. अजैनों ने भी किया समाधिमरण	28
13. 'संथारा' यह शब्द भी दिगम्बर जैन परम्परा में है	29
14. संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः ?	30

अज्ञेन ही नहीं
जैनों के मन
में भी
इस
सल्लेखना/संथारा
के विषय में
अज्ञान व्याप्त है
इस अज्ञान को
दूर करने के लिए
यह प्रयास है
जो लघु है/संक्षिप्त है
किन्तु पर्याप्त है।

All's well
That
Ends Well

The End
is Well
All
is Well

जीवन का अन्त सुधर सकता है प्रारम्भ नहीं

वैसे तो प्रायः सभी धर्मसम्प्रदायों में मरण के समय स्वयं समाधि ग्रहण करने की परम्परा है किन्तु जैनदर्शन में मरण को सुधारने की एक दीर्घकालीन अद्भुत साधना पद्धति का उल्लेख मिलता है। जन्म तो हमारे पूर्वजन्म के कृत-कर्म के फल से हो गया। उस जन्म को सुधारना अब अपने हाथ में नहीं है किन्तु मरण को सुधारा जा सकता है। किसी ने सच कहा है—

No one can go back and change a bad ^{beginning} beginning
But anyone start anything anytime and create a success-
ful ending. ^{can}

सल्लेखना का अर्थ— बस इसी सफलतापूर्वक अन्त का नाम समाधिमरण/संधारा/सल्लेखना कहा जाता है। यह सल्लेखना श्रावक या श्रमण कोई भी कर सकता है। श्रावक के लिए सल्लेखना मरण का उल्लेख सर्वप्रथम जैनदर्शन के सर्वमान्य ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र में मिलता है। इस तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ के रचयिता आचार्य उमास्वामी हैं जो ईसा की प्रथम शताब्दी के प्रमुख आचार्य हैं।

‘मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता’ - अध्याय 7 सूत्र 22

अर्थ— अन्त में मरण के समय सल्लेखना प्रीतिपूर्वक की जानी चाहिए। इस सूत्र की टीका करते हुए पाँचवी शताब्दी के आचार्य पूज्यपाद देव ‘सर्वार्थसिद्धि’ ग्रन्थ में कहते हैं—

‘सम्यक् कायकषायलेखना सल्लेखना’

अर्थात् समीचीन रूप से काय और कषायों को कृश करना सल्लेखना है।

इस तरह हम देखते हैं कि जैनाचार्यों ने काय की कृशता के साथ क्रोधादि कषायों की कृशता को सल्लेखना कहा है। क्रोध आदि भाव चित्त के विकृत भाव हैं इन भावों के अभाव में उस आत्मा में क्षमा, लघुता, संतोष, नम्रता आदि भाव प्रस्फुटित होते हैं जो अपने आप सिद्ध हो जाता है।

उपर्युक्त सूत्र में एक शब्द आया है 'जोषिता'। इसका अर्थ है कि वह गृही केवल सल्लेखना या समाधिमरण करना है इसलिए धर्मनियम मानकर ऐसा न करे किन्तु समाधिमरण के गुणों का विचार करके प्रीति पूर्वक ऐसा करे। यदि उस गृही साधक के मन में सल्लेखना मरण के लिए प्रीति भाव नहीं है तो जबरदस्ती सल्लेखना नहीं कराई जाती है और न दी जाती है। वही आचार्य पूज्यपाद देव लिखते हैं—

‘यस्मादस्यां प्रीतौ बलान्न सल्लेखना कार्यते।

सत्यां हि प्रीतौ स्वयमेव करोति’

सर्वार्थसिद्धि 7/22 की टीका

अर्थात् प्रीति नहीं होने पर बलात्(दवाब से) सल्लेखना नहीं कराई जाती है। प्रीति होने पर वह स्वयं सल्लेखना करता है।

वही आचार्य पूज्यपाददेव स्वयं इस प्रश्न को करते हैं कि यह समाधिमरण तो आत्महत्या है और इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि नहीं—
—क्योंकि— ‘रागद्वेषमोहाविष्टस्य हि विषशस्त्राद्युपकरणप्रयोगवशादात्मानं घ्नतः स्वघातो भवति, न सल्लेखनां प्रतिपन्नस्य रागादयः सन्ति ततो नात्मवधदोषः।’— सर्वार्थसिद्धि 7/22 की टीका

अर्थात् जो राग, द्वेष, मोह के वशीभूत होकर विष, शस्त्र आदि उपकरण के प्रयोग के कारण अपना घात करता है वह स्वघात(आत्महत्या) है किन्तु सल्लेखना को प्राप्त हुए जीव के राग आदि नहीं होते हैं इसलिए उसे आत्मवध का दोष नहीं आता है।

...

सल्लेखना किसके लिए

घर-परिवार में रहकर व्रत आदि लेकर आत्मसाधना करने वाले इन श्रावकों के लिए सर्वप्राचीन ग्रन्थ 'रत्नकरण्डक-श्रावकाचार' है। इस ग्रन्थ के रचयिता आचार्य समन्तभद्र हैं जो ईसा की 2-3 शताब्दी के महान दार्शनिक, तार्किक, नैयायिक आचार्य हैं। आपने अपने ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, श्रावके के व्रतों का वर्णन करके 'सल्लेखना' अधिकार लिखा है। जिसमें 9 श्लोकों में सल्लेखना का वर्णन किया है। आचार्य महोदय ने सल्लेखना का लक्षण (Defination) लिखी है—

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे ।

धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥122 ॥

अर्थ— उपसर्ग होने पर, दुर्भिक्ष पड़ने पर, बुढ़ापा होने पर और निःप्रतीकार(इलाज रहित) रोग होने पर धर्म (आत्मशुद्धि) के लिए शरीर को छोड़ देना आर्यों ने सल्लेखना कहा है।

1. उपसर्ग होने पर— उपसर्ग का अर्थ है कि कोई किसी वैर/ दुश्मनी के कारण उस साधक को मारे, जला दे, पीट दे, काट दे तो बिना किसी शत्रुता के अत्यधिक क्षमा शान्ति के परिणामों से शरीर छोड़ दे यह सल्लेखना है। अनेक मुनिराजों ने ऐसा समाधिमरण किया है। यहाँ तक कि ब्राह्मण 'चाणक्य' ने भी जीवन के अन्त में दीक्षा लेकर उपसर्ग सहन कर समाधिमरण किया है। (देखें 'जैन सम्राट्-चन्द्रगुप्त मौर्य' ज्ञानपीठ प्रकाशन)

2. दुर्भिक्ष पड़ने पर— दुर्भिक्ष का अर्थ है, ऐसी स्थिति बन जाना कि अपने नियमों के अनुरूप भोजन-पान नहीं मिल पाना। शुद्ध भोजन नहीं मिलना। जब सर्वत्र अन्न-जल का अभाव हो अपना धर्माचरण करना

असंभव हो तो भी वह साधक सल्लेखना ले लेवे। ऐसा प्रसंग आचार्य श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय हुआ और उस समय अनेक साधकों ने शास्त्र विहित रीति से समाधिमरण किया। इसी घटना के कारण अन्तिम मौर्य सम्राट् आचार्य भद्रबाहु के साथ हो लिए थे और उन्होंने आचार्य भद्रबाहु को गुरु बनाकर उनसे दीक्षा ली। उनका समाधिमरण कराया बाद में स्वयं का भी समाधिमरण विधिपूर्वक किया। गोम्मटेश्वर बाहुबली में 'चन्द्रगिरि' गुफा आपके नाम से बाद में प्रसिद्ध हुई। विस्तृत जानकारी के लिए देखें— 'जैन सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य'।

3. बुढ़ापा आने पर— वृद्धावस्था में जठराग्नि मंद पड़ जाती है, पाचनशक्ति भी बिगड़ जाती है, इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, ऐसे में यदि खाने-पीने की तृष्णा बनी रहती है तो वह तो वैसे ही पूर्ण नहीं होती। अतृप्त तृष्णा से अगले जन्म में यह जीव मांसाहारी जलचर प्राणी मगरमच्छ आदि बनता है। ऐसी स्थिति में यदि कोई आत्मा अपनी तृष्णा/इच्छा को शांत कर ले तो यह उसकी वीरता है। इसी वीरता का नाम समाधिमरण है। तृष्णा के साथ होने वाली मृत्यु नवजन्म में पुनः तृष्णा बढ़ाती है और उसी तृष्णा से फिर कर्मबंध और उसके फल से मृत्यु होती है, इस अनादि शृंखला को तोड़ने का यह वैज्ञानिक तरीका है इसे ही आत्मबोध कहते हैं।

4. निःप्रतीकार (इलाज रहित) रोग होने पर— ऐसे रोग जिसमें मरण कुछ दिन, कुछ माह या कुछ घंटे बाद निश्चित हो तो तड़फते हुए, विलखिते हुए मरने की अपेक्षा उस मृत्यु को हिम्मत से स्वीकार कर लेना ही समझदारी है। मनोवैज्ञानिक नियम है कि हम जिस चीज से डरते रहेंगे तो वह चीज हम पर हावी होगी और यदि हम उस पर हावी हो जाएंगे तो वह चीज हमें सता नहीं पाएगी। बस! यही तो करते हैं आत्मसाधक। मृत्यु को जीतने का भला और क्या तरीका हो सकता है? जिस मृत्यु ने सदा आत्मा को डराया, एक बार वह आत्मा ऐसा साहस कर ले कि उसी मृत्यु पर हावी हो जाए तो मृत्यु डर जाती है, सहम जाती है। कुत्ता तभी तक

आदमी का पीछा करता है जब तक कि आदमी पलट कर उसे आँख दिखाकर उस पर हावी न हो जाये।

यहाँ एक शब्द दिया है 'निःप्रतीकार', इसका अर्थ है कि जब तक आप निरोग हैं या रोग को किसी भी उपचार से निदान कर सकते हैं तो उसे कर लो। यदि सब कुछ करने के बाद भी रोग ठीक न हो तो फिर शान्त हो जाना ही बुद्धिमानी है। यही आचार्य गुणभद्रदेव (9वीं शती) ने 'आत्मानुशासन' ग्रन्थ में कहा है—

यावदस्ति प्रतीकारस्तावत्कुर्यात् प्रतिक्रियाम्।

तथाप्यनुशान्तानामनुद्वेगः प्रतिक्रिया ॥ 207 ॥

अर्थ— जब तक रोग का प्रतीकार है तब उसका प्रतीकार करो फिर भी यदि वह रोग शान्त न हो तो मन में उद्वेग/चिन्ता/उत्तेजना धारण मत करो।

इतनी सावधानी, इतनी जिजीविषा की रक्षा का उपाय जहाँ बताया गया है वहाँ आत्मवध जैसे जघन्य कार्य की कहीं संभावना नहीं है।

...

सल्लेखना का मनोविज्ञान

सल्लेखना या समाधिमरण का मनोविज्ञान जैनदर्शन में कहा गया है। इस विज्ञान की प्रयोगशाला समाधिमरण की विधि है। यह विधि कई वर्षों तक चलती है। आत्महत्या सहसा घटित होती है, क्षणभर में जीवन का अन्त कर देती है। मनुष्य आत्महत्या सबसे बच के, छुप के, दूसरे को धोखे में रखकर करता है जबकि समाधिमरण करने वाला जीव सबसे पहले अपने अभिप्राय को स्पष्ट रूप से सबके समक्ष घोषित करता है। गुरुजनों, परिवारजनों से आज्ञा माँगता है। उनके प्रति क्षमा धारण करता है। आचार्य समन्तभद्र रत्नकरण्ड-श्रावकाचार ग्रन्थ में कहते हैं—

स्नेहं वैरं सङ्गं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः।

स्वजनं परिजनमपि च क्षात्वा क्षमयेत् प्रियैर्वचनैः ॥

अर्थ— जो समाधिमरण चाहता है वह आत्मा शुद्धमनवाला हो, उसके लिए पहले अपने स्वजन- माता, पिता, स्त्री, पुत्र, पुत्री आदि एवं परिजन- चाचा, मामा, बुआ, नाना आदि तथा मित्र आदिकों से स्नेह, वैरभाव, संगति, परिग्रह(अपनी जमीन, जायदाद, धन सम्पत्ति आदि) को छोड़कर प्रियवचनों से उनसे क्षमा माँगकर उन्हें क्षमा करे।

अहो ! अत्यन्त विशुद्ध भावों की परिणति, अत्यन्त साम्य भावों का आलम्बन, सबके प्रति समता भाव वैर-स्नेह आदि का त्याग सबके सामने जीते जागते किया जाये, वह परमब्रह्म में लीन होने के अलावा और क्या हो सकता है ?

आत्महत्या में इसके विपरीत संक्लेश, कषाय, अत्यन्त भय, मन

में विकृत भाव, उद्वेग, चिन्ता, प्रकोप, जीवन से दूर भागने की उत्तेजना, कायरता, वैरभाव की अवधारणा, किसी के प्रेम, आसक्ति की पूर्ति न होने की हताशा, जीवन न जी पाने की निराशा, गहन अवसाद की दशा होती है।

जैनाचार्यों का यह मनोविज्ञान मृत्यु से भागने का नहीं मृत्यु से जागने का है। आज के इस वैज्ञानिक युग में भी किसी भी भाव की परिभाषा किसी धर्मग्रन्थ में इतनी स्पष्ट विधिवत् उल्लेखित नहीं होगी जितनी जैनधर्म के शास्त्रों में है।

सल्लेखना के इस मनोविज्ञान का विश्लेषण करते हुए आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं—

शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा ।

सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः ॥ 126 ॥

अर्थ— शोक, भय, अवसाद, क्लेद, कालुष्य, अरति इन भावों को भी छोड़कर अपने सत्त्व(मानसिक बल), उत्साह को उदीरित करके (बढ़ाकरके) श्रुतरूपी अमृत के द्वारा मन को प्रसन्न करना चाहिए।

जैनाचार्यों ने जितने भी विकृतभाव (Negative Thoughts) हैं उन सभी भावों को छोड़ने के लिए प्रेरित किया है जबकि आत्महत्या में ये सभी भाव उस जीव से कभी छूटते नहीं हैं। आचार्य कहते हैं कि उत्साह, बल बढ़ाकर मन को प्रसन्न करें, पवित्र करें। प्रसन्नता और पवित्रता का भाव कभी भी आत्महत्या में न होता है और न आत्महत्या करते हुए वह भाव बढ़ाता है। अच्छे भावों की वृद्धि के लिए जो उपाय बतलाया है वह भी पवित्र है। दूसरों से अपने मन में शास्त्रों को सुनो, उन उदाहरणों को सुनाओ जिन्होंने समाधिमरण किया है। यह उदाहरण उत्प्रेरक का काम करते हैं। मन का बल प्रकट करने के लिए सुकौशल स्वामी, सुकुमाल मुनि, अभयकुमार मुनि, गजकुमार आदि अनेकों उदाहरण शास्त्रों में हैं। उसके अलावा बड़े-बड़े समाधिमरण के भावनात्मक पाठ भी हैं, इत्यादि

अनेक कारणों से यदि कोई रोग, भूख-प्यासादि की भी बाधा होती है तो वह शान्त हो जाती है, मन सुखी हो जाता है। क्या ऐसा कोई आत्महत्या के लिए सुनाता है या प्रेरित करता है? क्या आत्महत्या करने वालों का कोई प्रेरक जीवन होता है? क्या आत्महत्या करने वालों की कथा सुनकर मन में शान्ति और पवित्रता का भाव आएगा?

इस मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किए बिना आत्महत्या और समाधिमरण का अन्तर नहीं समझा जा सकता है। ...

सल्लेखना या समाधिमरण— इच्छामृत्यु या सतीप्रथा नहीं है

इच्छामृत्यु का अर्थ क्या है ? जब इच्छा हो गई तब मर जाना या मृत्यु का सामना होने पर अपनी इच्छा का त्याग कर देना । लोग इच्छा मृत्यु का अर्थ यही समझते हैं, इसी का संविधान, कानून बना है कि जब इच्छा हो तब मर जाना । नहीं, ऐसी इच्छा मृत्यु को जैनाचार्यों ने अपराध/आत्महत्या कहा है ।

किसी भी श्रमण या गृहस्थ को इस इच्छामृत्यु की अनुमति जैनाचार्यों ने नहीं दी है । मृत्यु को ग्रहण करने की इच्छा भी तब करना जब ऊपर कहे गए चार कारण सामने हों । अरे ! इस समाधिमरण में तो मरने की इच्छा भी समाधिमरण अपनाने के बाद नहीं होती है । मुझे अब अधिक समय समाधिमरण विधि को अपनाये हुए हो गया, मुझे बहुत पीड़ा हो रही है, हे भगवान् ! मुझे जल्दी उठा ले, मेरा अन्त कब होगा, ऐसे भाव करना भी समाधिमरण का दोष है । आचार्य उमास्वामी (ईसा की प्रथम शती) ने कहा है कि—

‘जीवितमरणाशंसा’ अर्थात् जीने की इच्छा या मरने की इच्छा ये दोनों सल्लेखना के दोष हैं ।

इसलिए साधक गुणगुनाता है—

जीने की हो न इच्छा मरने की हो न वांछा
परिवार मित्रजन से मैं नेह को छुड़ाऊँ
दिन रात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊँ ॥

मरने की इच्छा से समाधिमरण अंगीकार नहीं किया जाता है किन्तु इस जड़ देह की आसक्ति और मरण के प्रति दुर्निवार भय को जीतने

का नाम समाधिमरण है। मरना तो आयु कर्म के क्षय से होता है। आयुकर्म का प्रतिसमय क्षय हो रहा है इसे 'आवीचिमरण' कहा है। आयुकर्म का शीघ्र क्षय हो या मेरी आयु जल्दी समाप्त हो जाए ऐसा भाव स्वायु का घातक होने से मरण की इच्छा है जो आत्मघात है। साधक ऐसी ऐच्छिक मृत्यु नहीं चाहता है। वह तो जड़ देह से भिन्न अपने आत्मिक गुणों ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना करता है। शरीर का अब जो हो सो हो उस पर उसका ध्यान नहीं रहता है। उसकी सेवा में रहनेवाले अन्य साधु, सुधी श्रावक आदि जो उसके योग्य, उसकी अवस्था, उसके रोगादि का प्रकोप को देखकर जो उचित भोजन-पान, औषधि आदि सेवन कराते हैं, वह साधक उसको ग्रहण करता है, अपनी तरफ से कोई इच्छा नहीं करता है, इसलिए बहिर्मुखी इच्छाओं को छोड़कर वह अनासक्त भाव से तब तक जीता है जब तक उसकी आयु अवशिष्ट रहती है। इसलिए यह इच्छामृत्यु नहीं है। वह सल्लेखना ग्रहण करनेवाला साधक क्षपक कहलाता है। वह क्षपक दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चार आराधनाओं का आराधक कहलाता है। उस आराधक के लिए आत्मा के ज्ञान, दर्शन आदि गुण ही शरण रह जाते हैं। वह पंचभूतात्मक जड़ देह की शरण छोड़ देता है क्योंकि उसे ज्ञात हो जाता है कि यह शरीर आत्मा को छोड़ देगा। इससे पहले वह खुद ही शरीर को हेय (छोड़ने योग्य) मानकर आत्मा की शरण ले लेता है। आचार्य वट्टकेर(ईसा की 2-3 शती) मूलाचार में कहते हैं—

णाणं सरणं मे दंसणं च सरणं चरियसरणं च ।

तव संजमं च सरणं भगवं सरणो महावीरो ॥ 2/60 ॥

अर्थ— हे क्षपक! तुझे ऐसी भावना करना योग्य है कि मेरा यथार्थज्ञान स्वभाव ही मेरा शरण है। मेरा सम्यग्दर्शन ही मेरा शरण है। मेरा चारित्र ही मेरा शरण है। मेरा संयम ही मेरा शरण है और भगवान महावीर ही मेरी शरण है।

इतनी सूक्ष्मता से जहाँ आत्मा के मनोभावों का विश्लेषण और

सावधानी रखी जाए वह एक बहुत बड़ी साधना पद्धति है। इस विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'इच्छामृत्यु' यह शब्द भी 'समाधिमरण' जैसे शब्द से तुलना करने लायक नहीं है। इच्छामृत्यु का मनोविज्ञान समाधिमरण के मनोविज्ञान से बिलकुल अलग है। इच्छामृत्यु का जैनदर्शन में निषेध है।

यदि कभी कोई श्रमण दीक्षा लेने के बाद यह विचार करे कि हमें शीघ्र ही उपवास आदि करके शरीर क्षीण कर लेना चाहिए क्योंकि पता नहीं बाद में ऐसे गुरु मिलें या न मिलें तो उसका ऐसा सोचना भी गलत है। धर्म विरुद्ध है। ऐसी इच्छाओं से जिसका मरण होगा उसके लिए जैनाचार्यों ने उसे स्पष्ट रूप से आत्मघात कहा है।

इच्छामृत्यु में तो आदमी जब चाहे तब मर सकता है किन्तु सल्लेखना में ऐसा नहीं होता है। यदि कोई असाध्य रोग से सहित है और तब भी उसकी आयु समाप्त होने के लक्षण दिखें तब ही वह आयु के अन्त में ही सल्लेखना अंगीकार करता है। इच्छा मृत्यु में आदमी कभी भी किसी भी बाह्य कारणों जैसे फाँसी लगा लेना, अग्नि में जल जाना, नदी आदि में कूद जाना, किसी जमीन के अंदर गुफा आदि में चले जाना आदि कारणों से मृत्यु स्वीकारता है किन्तु समाधिमरण में साधक मृत्यु नहीं स्वीकारता है किन्तु धीरे-धीरे त्याग के साथ जीवन जीता रहता है। इच्छा मृत्यु में आदमी जब सहसा एक क्षण में मर जाता है तब वह दुःख के साथ मरता है किन्तु समाधिमरण में वह बहुत शान्त भावों के साथ शरीर की ओर से मन हटाकर आत्मा के अभिमुख, आत्मगुणों का चिंतन करता है। आखिर इस शरीर के लिए कब तक मन में संक्लेश किया जाय? यह सोचकर वह निर्विकल्प हो जाता है।

देखो! इच्छा मृत्यु में तो आदमी ने मरने की सोच ली तो मरता ही है किन्तु समाधिमरण में मरने की नहीं सोचता है वह जीता है— संयम के साथ, अपने चारित्र के साथ। यदि उस साधक को यह दिखता है कि अब अपना संयम/चारित्र/धर्म इस शरीर के कारण छूट जाएगा तो वह तुरन्त

आत्म अभिमुख हो जाता है। आचार्य अकम्पन के साथ 700 मुनिराजों पर उपसर्ग हुआ। उन सबने समाधिमरण अंगीकार कर लिया क्योंकि कोई उनका शत्रु बनकर उनके संयमधर्म को छुड़ाना चाहता है, ऐसा उन्हें ज्ञात हो गया। उस शत्रु के प्रति भी क्षमाभाव धारण करके सभी ने निर्विकल्प होकर आत्मध्यान, परमात्मा की शरण प्राप्त करने की मन में ठान ली। बाद में जब वह उपसर्ग दूर हुआ तो वह समाधिमरण का विचार छोड़कर पहले की तरह सामान्य जीवन जीने लगे। क्या इच्छा मृत्यु में ऐसा होता है? इच्छा मृत्यु में तो एक बार आदमी मरने के लिए गया तो गया, वह जीवित लौट नहीं सकता। समाधिमरण के लिए तैयार होने का मतलब है— होश पूर्वक, जोशपूर्वक जीना। वस्तुतः जिसे दुनियाँ मरण समझती है वही वास्तविक जीवन है। उस समय आदमी केवल अपने लिए ही जीता है बाकी समय तो शरीर, परिवार आदि के लिए। इसलिए एक बात सदा याद रखो—

**दूसरों के लिए भले ही जाओ,
पर, मरो तो अपने लिए ॥**

समाधिमरण/सल्लेखना में आनन्दपूर्वक जीवन जीता है। अब मरना है, उसका डर भी नहीं, जो होना है, उसे साक्षीपूर्वक देखना है, न भय, न चिन्ता, न किसी से राग, न द्वेष मात्र ज्ञाता-दृष्टा बनकर अन्तिम क्षण को देखना, ऐसी दशा देखकर मौत भी काँपने लगती है। इसलिए सच ही कहा है—

**देखकर जीने के मेरे होंसले
मौत भी मुझसे पलायन कर गयी ॥**

उसी तरह सतीप्रथा में भी स्त्री को अकारण ही जीते जी जलकर मरना पड़ता है। यह प्रथा तो साक्षात् आत्महत्या है, इसमें उस स्त्री को असह्य वेदना होती है और यह भी क्षणिक आवेश में आकर की जाती है। इस सतीप्रथा की तुलना भी सल्लेखना से करना बहुत बड़ी अज्ञानता है।

समाधिमरण की संक्षिप्त शारीरिक वैज्ञानिक विधि

पहले कहे हुए भावों को छोड़कर जब कोई साधक विधिपूर्वक सल्लेखना करता है तो वह पहले मोटा भोजन- दाल, रोटी आदि आहार छोड़ता है। आहार इसलिए छोड़ा जाता है कि उसकी अवस्था उस भोजन को पचाने के लिए अनुकूल नहीं होती है। यदि कदाचित् बलिष्ठ शरीर होने से पाचन शक्ति हो भी तो भी उस भोजन के प्रति तृष्णा छोड़कर वह अपने मन को जीतता है। भोजन छोड़ने के बाद वह स्निग्धपान करता है, इस स्निग्धपान से उसके शरीर की शुद्धि होती है और बल भी बना रहता है। फिर धीरे-धीरे इस स्निग्धपान को भी छोड़कर 'खरपान' गर्मजल का सेवन करता है जिससे उसका शरीर भीतर से शुद्ध हो जाता है और रोगजनित पीड़ा भी कम हो जाती है। इस विधि से कई बार कैंसर, ब्रेनट्यूमर जैसे रोगों की पीड़ा भी समाप्त होती हुई देखी गई है और यह भी देखा है कि समाधिमरण करनेवाला साधक कहता है कि अब मैं स्वस्थ हो गया हूँ। यह भोजन न करने का परिणाम है। कोई चिकित्सक इस बात को माने या न माने लेकिन यह सत्य है कि जानलेवा असाध्य बीमारियों की पीड़ा खान-पान ज्यों का त्यों करते रहने से बढ़ती रहती है। असाध्य रोग में बलिष्ठ भोजन करने से शरीर पुष्ट नहीं होता है किन्तु रोग ही पुष्ट होता है। यह बात शरीर में आसक्ति रखनेवाले मोही जनों को समझ नहीं आ सकती है। आचार्य समन्भद्र स्वामी लिखते हैं कि—

आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्धयेत् पानम्।

स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत् क्रमशः ॥ 127 ॥

अर्थ— आहार को छोड़कर क्रमशः स्निग्धपान को बढ़ाये फिर स्निग्धपान को भी घटाकर खरपान को बढ़ाना चाहिए। क्रमशः खरपान भी कम करके यदि शक्ति बने तो उपवास करके भी पंचनमस्कार मंत्र के साथ पूर्ण प्रयत्न के साथ शरीर छोड़ना चाहिए।

...

समाधिमरण साधना के शिखर का कलश

जिस तरह विद्यार्थी वर्ष भर पढ़ता है उस पढ़ाई की सफलता उसको परीक्षा देने में है। जिस तरह कोई खिलाड़ी खेल का अभ्यास करता है उसकी परीक्षा सबके समक्ष होती है उसी तरह जो साधक तप-त्याग की साधना जीवन पर्यन्त करता है उसकी परीक्षा जीवन के अन्त में समाधिमरण से होती है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं—

अन्तःक्रियाधिकरणं तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते।

तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥1 23 ॥

अर्थ— सकलदर्शी सर्वज्ञ भगवान ने अन्तरंग आत्मा में क्रिया का अधिकरण और तप का फल समाधिमरण कहा है इसलिए जितनी शक्ति हो उस शक्ति अनुसार समाधिमरण के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

साधक ने जीवन पर्यन्त जो धर्म किया है, जो भेद-विज्ञान किया, जो आत्मा और शरीर का विज्ञान समझा है, जो आत्मा के गुणों की आराधना की है, जो क्षमा आदि धर्मों का पालन किया है वह धर्म भी परभव में, परलोक में तभी जाता है जब आत्मा का समाधिमरण से परभव में गमन हो। इसीलिए आचार्य अमृतचन्द्र (ईसा की 10वीं शती) 'पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय' में कहते हैं—

इत्यमेकैव समर्था धर्मस्वं मे मया समं नेतुम्।

सततमिति भावनीया पश्चिम सल्लेखना भक्त्या ॥ 175 ॥

अर्थ— यह सल्लेखना ही मेरे धर्म-धन को मेरे साथ ले जाने में समर्थ है इसलिए भक्ति से अनुराग पूर्वक जीवन के अन्त में सल्लेखना हो ऐसी भावना निरन्तर करना चाहिए।

जिस तरह कोई मन्दिर बनाता है उसका शिखर बनाता है किन्तु उसके ऊपर कलश नहीं चढ़ाता है तो मंदिर अधूरा रहता है, शोभित नहीं होता उसी प्रकार साधक की साधना के शिखर का कलश समाधिमरण है।

समाधिमरण के लिए ही साधु जीवन जीता है

साधु जीवन जब से प्रारम्भ होता है तब से ही वह समाधिमरण की भावना करता है। भगवान महावीर के समक्ष उनके मुख्य शिष्य प्रथम गणधर आचार्य गौतमस्वामी ने प्रतिक्रमण पाठ सभी श्रमणों को सुनाया जिसमें प्रतिदिन दिन में तीन बार और अन्य समय में भी स्वाध्याय, भक्ति आदि करते हुए प्रत्येक क्रिया के अन्त में यह पाठ नियम से पढ़ा जाता है कि—

‘दुक्खखओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुण संपत्ति होदु मज्झं’

गौतमगणधर (ई.पूर्व 526 शती में) ने स्वयं भी यही भावना की कि— हे भगवन्! मेरे दुक्खों का क्षय हो, कर्मों का क्षय को, बोधिलाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और मुझे जिनेन्द्रभगवान के गुणों की संपत्ति प्राप्त हो।

साधु जीवन जब से प्रारम्भ होता है वह समाधिमरण की ही भावना करता है। उसका भोजन मात्र जीने के लिए और तपःसाधना करने के लिए होता है। वह इसीलिए योगी होता है। योगी जीने के लिए खाता है और भोगी खाने के लिए जीता है।

समाधिमरण की मुख्यता को लेकर ही आचार्यों ने पृथक् ग्रन्थ रचे हैं। साधु जीवन शुरू करते ही कोई उपसर्ग आदि या दुर्घटना आदि हो जाने पर उस साधक को समाधिमरण का प्रसंग आ सकता है उसके लिए आचार्यों ने उसे ‘संक्षेप प्रत्याख्यान विधि’ कहा है। इस विधि का आचार्य वट्टकेर(ईसा की 2-3 शती) ने ‘मूलाचार’ ग्रन्थ में तृतीय ‘संक्षेप प्रत्याख्यान अधिकार’ में किया है और यदि साधक निर्विघ्न रूप से जीवन जीता है

तो वह 'वृहत्प्रत्याख्यानमरण' की तैयारी करता है।

जिसने भी जन्म लिया है उसको मरना अवश्य है किन्तु शील, व्रतों के साथ धीरतापूर्वक मरने वाला वीर होता है, उसके मरण को 'वीर-मरण' कहा है। आचार्य श्री वट्टकेर प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि—

वीरेण वि मरिदब्बं णिव्वीरेण वि अवस्स मरिदब्बं।

जदि दोहिं वि मरिदब्बं वरं हि वीरत्तणेण मरिदब्बं ॥

अर्थ— जो वीर हैं उन्हें भी मरना है और जो मृत्यु से डरने वाले कायर हैं उन्हें भी मरना है। यदि दोनों का मरण अवश्य है तो वीरता से मरण करना ही श्रेष्ठ है। इसी तरह जो धीर है, दृढ़चित्त है वह भी मरेगा और जो धैर्य रहित है वह भी मरेगा ऐसी स्थिति में धैर्यसहित मरना ही श्रेयस्कर है।

आचार्य कहते हैं कि जब तक जिओ तब तक अपने आत्मिक गुण, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की खूब आराधना करो। अचानक यदि देह मिटती हुई दिखे तो अपनी आत्मा के गुणों की रक्षा करो। आत्मा के ये गुण रत्न की तरह कीमती हैं, इसलिए साधक को रत्नत्रय की आराधना करने वाला कहा जाता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये तीन रत्न हैं। इन्हीं को रत्नत्रय कहते हैं। यही मोक्ष का मार्ग है। जब किसी के घर में आग लग जाए और उसे दिखे कि मैं अपनी धन-सम्पत्ति अब नहीं बचा सकता हूँ तो वह अपने घर में रखे हुए रत्न आदि को लेने का प्रयास करता है, और सब जल जाय तो उसको कोई दुःख नहीं होता है उसी तरह देह छूटते समय आत्मा के रत्नत्रय की रक्षा करो, यह जैनाचार्यों का उपदेश है।

...

समाधिमरण साधने के लिए महान् ग्रन्थ 'भगवती आराधना'

दिगम्बर आचार्य शिवार्य की 'भगवती आराधना' ई. सन् द्वितीय-तृतीय शताब्दी की एक अनुपम अद्भुत कृति है जिसका दूसरा नाम 'मूलाराधना' भी है। इस ग्रन्थ में मरण सुधारने के 17 प्रकार बतलाये हैं। मरण की इतनी विशद व्याख्या विश्व के किसी सम्प्रदाय और धर्म में नहीं मिलेगी। वर्तमान पंचमकाल के साधक को 'सविचार भक्त प्रत्याख्यान मरण' करना चाहिए। इस मरण का वर्णन चालीस अधिकारों (Chapter) में किया गया है। जब कोई समाधिमरण करता है तो उस जीव को एक विशिष्ट संज्ञा दी जाती है 'क्षपक'। क्षपक अर्थात् आत्मा में बंधे कर्मों का विशेष क्षय करने वाला। उस क्षपक की सल्लेखना में सावधानी के लिए 48 मुनियों की आवश्यकता बतायी है जो यथायोग्य आवश्यकतानुसार भी समायोजित की जाती है।

निर्यापक गुरु— समाधिमरण की प्रक्रिया कोई अपने मन से जिस किसी के समक्ष नहीं होती है। समाधि करनेवाला क्षपक ऐसे गुरु की खोज करता है जिसमें अच्छे गुण हों। जैसे वह मृदु-मधुरभाषी होना चाहिए, वह वैयावृत्ति करने में अग्रणी होना चाहिए, वह चारों अनुयोगों का विशिष्ट ज्ञाता हो, समय परिस्थिति के अनुकूल दृष्टान्त-कथा को कहने वाला हो इत्यादि अनेक गुणों से सहित जो होता है ऐसा गुरु बनाया जाता है। यह गुरु शिक्षा-दीक्षा गुरु से भिन्न भी हो सकता है। समाधि करने वाले इन गुरु को निर्यापक गुरु कहते हैं। सल्लेखना लेने वाले को क्षपक कहते हैं। वह क्षपक निर्यापक गुरु की अनेक तरह से परीक्षा करता है तथा

निर्यापक गुरु भी क्षपक की परीक्षा करते हैं। परीक्षा की विधि 'भगवती आराधना' ग्रन्थ में विस्तार से दी है। इस समाधि के प्रकरण में निमित्तज्ञान के माध्यम से भी क्षपक और गुरु की परीक्षा की जाती है। इसके अतिरिक्त सल्लेखना लेने वाले क्षपक की कितनी आयु शेष है इस प्रकार के ज्ञान के साथ ही सल्लेखना ली जाती है और दी जाती है। मरण करने वाले की उम्र अब एक-दो वर्ष, छह महीना, दो महीना, दो दिन, एक दिन या कुछ घंटे बची है इसके लक्षण शरीर में उत्पन्न होते हैं। इसके लिए अलग से ग्रन्थ जैनाचार्यों ने बनाये हैं। जिनमें 'रिष्ट समुच्चय' ग्रन्थ बहुत उपयोगी है। यह सल्लेखना छह प्रकार के तप के साथ शरीर के लिए और छह प्रकार के अंतरंग तप के साथ आत्मा में की जाती है। सल्लेखना की यह विधि उत्कृष्ट रूप से बारह वर्ष तक भी चलती है।

इस समाधिमरण की विशेषता, पूज्यता, महनीयता केवल इस बात से ही जानी जा सकती है कि शिवार्य ने इस समाधिमरण का विस्तृत वर्णन 2179 गाथाओं में किया है। यह ग्रन्थ इतना लोकप्रिय और अनुसरणीय रहा है कि इस ग्रन्थ पर सातवीं शताब्दी से ही टीकाएँ और विवृतियाँ लिखी जाती रही हैं। अपराजित सूरि की विजयोदया टीका, पं. आशाधर की मूलाधारनादर्पण टीका प्रभाचन्द्र की आराधना पंजिका और शिवजित अरुणकी भावार्थ दीपिका नामक टीकाएँ हैं। इस ग्रन्थ की कई गाथाएँ आवश्यक निर्युक्ति, बृहत्कल्पभाष्य, भक्तिपङ्कणा, संधारणा आदि श्वेताम्बर ग्रन्थों में भी पायी जाती है।

अन्यग्रन्थ— इस भगवती आराधना के अलावा आचार्य वट्टकेर का मूलाचार, आचार्य समन्तभद्र का रत्नकरण्डश्रावकाचार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, प्रतिक्रमण-पाठ, तत्त्वार्थसूत्र, उसकी अनेक टीकाएँ, सागार धर्माभूत, अनगार धर्माभूत, मरणकण्डिका आदि अनेकानेक ग्रन्थों में इस समाधिमरण का उल्लेख है। पुराणग्रन्थों में इसके उदाहरण भरे पड़े हैं।

...

मोक्ष प्राप्ति के लिए सल्लेखना/संथारा एक अनिवार्यता

इस सल्लेखना को करनेवाला साधक आत्मगुणों की आराधना का आराधक कहलाता है, जो इस प्रकार की आराधना करते हैं वे नियम से सिद्ध होते हैं।

सव्वुक्कस्सं जोगं जुजंता दंसणे चरित्ते य ।

कम्मरयविप्पमुक्का हवंति आराधया सिद्धा ॥ भ.आ.1937 ॥

अर्थ— आराधना का धारक सर्वोत्कृष्ट योग को दर्शन, ज्ञान, चारित्र में लगा करके कर्मरूप रज से रहित होकर सिद्ध होते हैं।

चूँकि अभी इस पंचमकाल में कोई भी जीव केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है और न मोक्ष जाता है। तो भी जो एक बार भाव सहित समाधिमरण अंगीकार करता है, वह अधिक से अधिक सात-आठ भवों में मोक्ष प्राप्त कर लेता है और जघन्य से दो-तीन भव में मोक्ष को प्राप्त होता है। मूलाचार में आचार्य वट्टकेर स्वामी कहते हैं—

आराहण उवजुत्तो कालं काऊण सुविहिओ सम्मं ।

उक्कस्सं तिण्णि भवं गंतूण य लहइ णिव्वाणं ॥ 2/61 ॥

अर्थ— जो समाधिमरण का आराधक क्षपक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप इन चार आराधनाओं में अच्छी तरह अतिचार रहित हो उपयुक्त होता है वह भली प्रकार मरण करके उत्कृष्ट से अर्थात् अधिकाधिक तीन भव इस संसार में रहकर निर्वाण प्राप्त कर लेता है। यही बात गणधर परमेष्ठी रचित प्रतिक्रमण पाठ में कही है कि— ‘उक्कस्सेण दो तिण्णि भवगहणाणि जहण्णेण सत्तद्ध-भवगहणाणि।’ इस तरह मोक्ष के लिए समाधिमरण अनिवार्य है।

...

समाधिमरण की अवधारणा अनादिनिधन है

यह मानना नितान्त गलत है कि आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने इस धर्म को पहचान दी और उन्होंने ही इस तरह का त्याग करके समाधिमरण की विधि करने की प्रेरणा दी है। सुधी विद्वान को यह बात मुक्त कंठ से स्वीकार कर लेनी चाहिए कि जैनधर्म सर्वाधिक प्राचीन विश्व धर्म है। यह बात अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है और वर्तमान के अनेकानेक, भारतीय, विदेशी विद्वानों ने इसे एक पृथक् धर्म श्रमण संस्कृति के प्रवाह के रूप में स्वीकारा है। जैन धर्म उतना ही प्राचीन है जितनी यह धरती, जितना यह आकाश और जितना यह विश्व।

भगवान महावीर अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर थे। उनसे पहले 23 तीर्थंकर और हो चुके हैं। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हुए हैं जिनकी स्तुति के स्वर ऋग्वेद जैसे प्राचीन ग्रन्थ में भी उपलब्ध हैं। हडप्पा, मोहनजोदड़ो की सभ्यता में प्राप्त मूर्तियों, मोहरों पर कायोत्सर्ग मुद्रा में वृषभ चिह्न से अंकित ऋषभदेव की मुद्राएँ जैनत्व की प्राचीनता की यशोगाथा गा रही हैं। जैनदर्शन के अनुसार भगवान महावीर और ऋषभदेव के बीच का चतुर्थकाल लगभग एक कोड़ाकोड़ी सागर का अन्तराल है। इन असंख्यात वर्षों से पहले भी जब ऋषभदेव तीर्थंकर नहीं बने थे। अपने दस भव पूर्व की 'महाबल' राजा की पर्याय में वह जब थे तब भी उन्होंने 'समाधिमरण' किया था। इसी के बाद से उनकी आत्मा का उत्थान प्रारम्भ हुआ। सभी तीर्थंकरों ने समाधिमरण के साथ आत्मआराधना की है। चाहे भगवान पार्श्वनाथ हों या महावीर सभी पूर्व भवों में कई बार समाधिमरण करके स्वर्ग गए फिर वहाँ से आकर मनुष्य बनकर तप करते हुए निर्वाण सिधारे हैं। आदिपुराण, उत्तरपुराण, हरिवंशपुराण आदि में इन महापुरुषों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है।

...

पशु भी करते हैं समाधिमरण

जैनधर्म प्राणिमात्र के कल्याण का वैश्विक धर्म है। इसे 'सर्वोदयी धर्म' आचार्य समन्तभद्र ने अपने 'युक्त्यनुशासन' ग्रन्थ में इसीलिए घोषित किया है कि इसके पालने में पशु/पक्षी आदि सभी जीवों के अन्दर परमात्म तत्त्व का उदय होने लगता है। भगवान पार्श्वनाथ का जीव अपने 9-10 भव(जन्म) पहले हाथी की पर्याय में था। उस हाथी ने मुनिराज से सम्बोधन पाकर अहिंसादि अणुव्रतों का ग्रहण किया। उसके लिए उसके परिवार के अन्य हाथी सूखे पत्ते, फलादि लाकर दिया करते थे जिन्हें वह खाकर अपना जीवन चलाता था। शनैः-शनैः जब उसकी काया कृश हो गई तो एक दिन स्वच्छ बहुता हआ नदी का जल पीने के लिए वह किनारे पर उतरा तो तट की कीचड़ में उसका पैर फँस गया। उसी समय पूर्वभव के वैरी जीव सर्प ने उसको डस लिया। वह साम्य भाव से मरण कर हाथी से देव बन गया।

इसी तरह महावीर भगवान का जीव जब पूर्व पर्याय में सिंह था तो उसने भी मुनिराज से संबोधन पाकर अहिंसादि व्रत लेकर समाधिमरण किया ऐसी अनेकानेक घटनायें जैन शास्त्रों में उल्लिखित हैं। देह से भिन्न सत् चित् आत्मा का ज्ञान पशुओं/पक्षियों को भी होता है। भोगविलासता के इस युग में मानव को मानवीयता का ज्ञान हो जाए वही दुर्लभ है फिर देह से भिन्न आत्मा के लिए मरना और परमात्मा तत्त्व की उपलब्धि करना तो अत्यन्त दुर्लभ से दुर्लभतम है।

भगवान पार्श्वनाथ ने राजकुमार की अवस्था में जलते हुए नाग-नागिनि को संबोधित किया और उन्हें सांत्वना दी जिसके प्रभाव से वह मरण कर धरणेन्द्र-पद्मावती नाम के देव-देवी बने। यह घटना जगत् प्रसिद्ध है। इसी तरह के अनेकानेक उदाहरण पशुओं की समाधिमरण के पुराण ग्रन्थों में उल्लिखित हैं।

...

अजैनों ने भी किया है समाधिमरण

जैनधर्म एक आचार-विचार की पद्धति है यह किसी जाति से जुड़ी साम्प्रदायिकता या परम्परा नहीं है। जो माने उसका यह धर्म है। भूदान आंदोलन के प्रणेता 'विनोबा भावे' ने जैनदर्शन को अच्छी तरह पढ़ा था। जीवन में उन्होंने अहिंसा, सत्य के सिद्धान्तों को अपनाया। अपरिग्रहवाद उन्होंने यहीं से सीखा। जीवन के अन्त में उन्होंने 'समाधिमरण' अंगीकार किया। जब यह बात तत्कालीन प्रधानमंत्री 'इन्दिरा गाँधी' को पता चली तो वह उन्हें रोकने के लिए गई थी। उस समय विनाबा जी ने कहा— मुझे अपना अन्त दिखाई दे रहा है, कृपया आप मेरे और भगवान के बीच में न आयें। आपने पहले से ही बता दिया था कि मेरा मरण भगवान महावीर के मोक्ष दिवस के दिन होगा। वैसा ही हुआ। यह पवित्र भावों का परिणाम है।

एक प्रसंग परमपूज्य आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागरजी महाराज के श्रीमुख से सुना था कि डॉ. सम्पूर्णानन्द जो कि बनारस में थे। उन्हें जैनदर्शन के सभी सिद्धान्त अच्छे लगते थे। उनका कहना था कि मुझे समाधिमरण/सल्लेखना का औचित्य जैनदर्शन में क्या है? यह समझ नहीं आता है। दैवयोग से जीवन के अन्त में वह किसी असाध्य बीमारी से ग्रसित हो गए। बिस्तर पर ही लेटे रहते थे। मूत्र सम्बन्धी बीमारी थी। उस समय उन्हें याद आया कि जैनदर्शन में सल्लेखना का विधान क्यों किया गया है? उन्हें उसकी प्रासंगिकता समझ में आयी और अनुभूत हुआ कि सल्लेखना ऐसी असाध्य व्याधि होने पर हितकारी है। यह प्रसिद्ध व्यक्तियों के उल्लेख हैं। पूरे भारत में फैले सभी साधु/साध्वी के पास अनेक अजैन भी संथारा/सल्लेखना करते रहते हैं जिनका कोई उल्लेख संभव नहीं है।

...

‘संधारा’ यह शब्द भी दिगम्बर जैन परम्परा में है

‘संधारा’ शब्द ‘संस्तर’ का प्राकृत रूप है। जिस स्थान पर घास, तृण, काष्ठफलक पर समाधिमरण करने वाला क्षपक रहता है, बैठता है, शयन करता है वह संस्तर (आज की भाषा में शायद यही शब्द बिस्तर है) कहलाता है। भगवती आराधना में इसी अर्थ में संस्तर का प्रयोग है—

संधारो कायव्वो सव्वत्थ समो सगिं तत्थ - गाथा-1992

जदि विसमो संधारो - गाथा-1994

यह ‘संधारा’ सल्लेखना मरण के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। आत्मसाधक सल्लेखना के लिए संधारा को प्राप्त होता हूँ ऐसी प्रार्थना करता है। ‘वृहत्प्रत्याख्यान संस्तरस्तवाधिकार’ में आचार्य वट्टकेर मूलाचार ग्रन्थ में लिखते हैं—

णमोत्थु धुदपावाणं सिद्धाणं च महेसिणं।

संधारं पडिवज्जामि जहा केवलिदेसियं ॥

अर्थ— जिनके पाप नष्ट हुए हैं ऐसे सिद्ध भगवान, और महर्षि केवलज्ञानियों के लिए ‘नमोस्तु’ होवे। जैसा केवली भगवान ने कहा है वैसे ही संधारा को मैं प्राप्त होता हूँ।

संस्कृत टीकाकार आचार्य वसुनन्दी ने संस्तर का अर्थ अभ्यन्तर और बाह्य दोनों रूपों में लिया है। उसमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपोमय अभ्यन्तर संस्तर है तथा भूमि, पाषाण, फलक, तृणमय बाह्य संस्तर है।

...

जयोदयादि महाकाव्य के रचयिता आचार्य श्री ज्ञानसागर जी द्वारा विरचित

संन्यास ँषोऽस्तु किमात्मघातः ?

किलात्मघातः क्रियते तु देह-भृताऽपमानाद्यनुभूय चेह ।

संन्यस्यते शान्तिमताऽऽत्मनाऽतः संन्यास ँषोऽस्तु किमात्मघातः ॥ 1 ॥

अन्वयार्थ : [इह] इस संसार में [देहभृता] देहधारी के द्वारा [अपमानाद्यनुभूय] अपमान आदि का अनुभव करके [किल] निश्चित ही [आत्मघातः] आत्मघात [क्रियते] किया जाता है [तु] परन्तु [शान्तिमता] शान्ति धारण करने वाली [आत्मना] आत्मा के द्वारा [संन्यस्यते] संन्यास धारण किया जाता है [अतः] इसलिए [ँषः संन्यासः] यह संन्यास [किम्] क्या [आत्मघातः] आत्मघात [अस्तु] हो सकता है ?

भावार्थ : अपमान आदि से उत्पन्न संक्लेश को सहन नहीं कर पाने के कारण संसार में कोई जीव आत्महत्या कर लेता है । उस आत्महत्या की तुलना संन्यास / सल्लेखना से नहीं की जा सकती है । आत्मवध करनेवाला आत्मा दुःखी होकर कलुषता के भावों से शरीर छोड़ता है, किन्तु संन्यास धारण करने वाला अत्यन्त शान्त परिणामों से शरीर छोड़ता है । आत्महत्या में संक्लेश की प्रचुरता रहती है, किन्तु सल्लेखना में विशुद्धि की प्रचुरता होती है । देह का त्याग दोनों में है, किन्तु प्रयोजन के अनुसार आत्म परिणामों की विपरीतता है । इसलिए यह संन्यास क्या आत्मघात कहा जा सकता है ? अर्थात् नहीं कहा जा सकता है ।

Some people commit suicide as they are not able

to tolerate the humiliation and pain caused due to insult or some harsh words. Albeit this cannot come up to the divine level of what we define as sanyas/salenkhna or religious Samadhi-maran. The people who commit suicide do it as they are troubled and perturbed because of the worldly disappointments and soreness. The person who decides for sanlekhna or sanyas does not have any pain while leaving the body as he is no more attached to it. In suicide there is loads of hurt, anguish and ache but sanlekhna is all about serenity ^{and} divinity. In both the cases the soul departs from the body however the emotions and the purpose make a stark contradiction to each other.

1? **Do** we still consider sanyas ^{suicide} and sanlekhna on the same lines. Can they be compared to each other. No. It cannot.

नाशोन्मुखं नाम शरीरमेतन्निक्षिप्यते तादुगुपक्रमेत् ।

They can't.

हृषीकनिःस्वान्तनियन्त्रणातः संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः ॥ 2 ॥

अन्वयार्थ : [एतत्] यह [शरीरं] शरीर [नाशोन्मुखं नाम] नाश के उन्मुख रहता है । [हृषीकनिःस्वान्त-नियन्त्रणातः] इन्द्रिय और मन के नियन्त्रण से [तादृग्] उस प्रकार [उपक्रमेत्] उपकार करो [निक्षिप्यते] जिससे यह छूट जाय [एषः संन्यासः] यह संन्यास [किम्] क्या [आत्मघातः] आत्मघात [अस्तु] हो सकता है ?

भावार्थ : स्वाभाविक रूप से यह शरीर प्रति समय नष्ट हो रहा है । यह शरीर विनाश की ओर है । ऐसे शरीर को भी उस तरह चलाओ कि यह शरीर अन्तिम समय में छूट जाय । अपने मन और इन्द्रियों का नियन्त्रण बनाए रखो । यह नियन्त्रण ही संयम है । संयम से चलाने पर यह शरीर अन्त

में आसानी से छूट जाता है। इस तरह संयम के साथ शरीर का त्याग करना संन्यास है। क्या आत्महत्या में यह संयम है? क्या आत्महत्या में शरीर को उस तरह संयम के साथ अभ्यस्त किया जाता है? क्या आत्महत्या में मन और इन्द्रिय को इस तरह वश में किया जाता है? यदि नहीं, तो फिर यह संन्यासमरण आत्मघात कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता है। अहो! यह संन्यास यानी सल्लेखना कितना अद्भुत है कि जो स्वयं नष्ट हो रहा है, विनाशीक है, उस शरीर को भी बड़ी संभाल के साथ, उस शरीर के प्रति ममत्व का त्याग कर त्यागा जाता है। इस प्रकार के खान-पान से उसे चलाया जाता है कि वह धीरे-धीरे अपने आप धराशायी हो जाता है। जबकि आत्मघात में सहसा दुःखी होकर शरीर मिटा दिया जाता है, इसलिए यह संन्यास आत्मघात नहीं है। दोनों में बहुत अन्तर है। संन्यास में शरीर और आत्मा दोनों का उपकार है, जबकि आत्महत्या में दोनों का अपकार होता है, यही बहुत बड़ा अन्तर है।

Our body is ^{we should develop} destroying every moment. It is in self destruction mode. Practice Such state of mind that in our last breath we do not carry the ^{attachment to} body along with us. Have ^{we} a deep control on your mind, intellect, and soul and senses. If we live with disciplined emotions and desires, the body will be left easily at the time of death. To leave the body with such restricted desires is termed as sanyas. Does suicide have this kind of self-control?? Do we control our senses and desires this way when we commit suicide??? If No, ^{can we} ^{can we} ^{can we} them how would you pronounce Samadhi maran as suicide??? So ^{the conclusion is we} We conclude that it cannot. How beautiful is the Samadhi maran!!!! To live in the body, ^{we} with body yet have no emotions attached to the body and very easily leaving our claim on the body and its

demands.. It is a divine practice to leave the perishable edibles gradually to be free of this perishable body one day. How can we compare this divinity ^{no practice} with suicide ⁱⁿ where ^h one ⁿ punishes the body all of the sudden to death for some worldly pain or humiliation.

I would again emphasise that suicide and samadhimaran have nothing in common ^{Extra} (with each other). While sanyaas is a graceful act to body, mind and soul, suicide is stark opposite.

किन्त्वात्मनोग्लानिवशेन घातस्तनोः सुचारोः क्रियते बतातः ।

उद्विज्य सञ्जीवनतोऽयि मातः संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः ॥ 3 ॥

अन्वयार्थः : [किन्तु] किन्तु [बत] खेद है कि [अयि मातः] अरे माता ! [सञ्जीवनतः] अच्छे जीवन से [उद्विज्य] उद्विग्न होकर [आत्मग्लानिवशेन] आत्मग्लानि के कारण [सुचारोः] सुन्दर [तनोः] शरीर का [घातः] नाश [क्रियते] किया जाता है [अतः] इसलिए [एषः] यह [आत्मघातः] आत्मघात [किम्] क्या [संन्यासः] सल्लेखना [अस्तु] हो सकता है ?

भावार्थः : हे माँ शारदे ! खेद है कि लोग आत्महत्या और संन्यास मरण को एक समान मानते हैं । अरे ! आत्मघात तो इस जीवन से दुःखी होकर किया जाता है । इस मानव जीवन में जब अनेक बाधाओं से आदमी परेशान हो जाता है तब आत्मग्लानि से भर जाता है । ऐसी स्थिति में वह अपने अच्छे शरीर का घात करता है और इस सुन्दर जीवन को मिटा देता है । वह सोचता है कि इस शरीर के नाश से मुझे दुःखों से मुक्ति मिल जाएगी किन्तु सल्लेखना में आत्मविशुद्धि के भावों से आत्मा भरा होता है । उसे इस जीवन का कोई दुःख नहीं होता है । वह संसार की वास्तविकता का और शरीर के स्वभाव का विचारकर शान्त परिणामों से सहित होता है । वैराग्य से उसका मन भरा होता है । वह शरीर से अपनी आत्मा को नहीं जोड़ता हुआ

इस शरीर का त्याग सहज कर देता है। उसका उद्देश्य शरीर के कारण होने वाले जन्म, मरण की परम्परा को तोड़ना है। आत्महत्या करनेवाला तो फिर से दुःख भोगता है, जबकि संन्यासी आत्मा दैवीय और मोक्ष के सुख पाता है।

O Goddess of wisdom ! pity those people who consider suicide and sanyas to be alike. Alas! Suicide is an act committed in a moment of anguish, anger or pain. when a human being is sick and tired of the misery of the worldly desires and disappointments then he commits suicide due to self pity or self righteousness. He loses his sense of right and wrong, takes away the beauty of life and kills himself thinking that it would be a permanent solution to his temporary misery. Right opposite to this Salenkhna drives the person to a state of serene introspection of self and soul. It leads to peace and calm. Man is free of any pain, sorrow or happiness. He is able to distinguish between the worldly materialistic pleasure and the nature of human body. Hence becomes calm and peaceful with no desire to keep himself connected to anything but the soul. He is able to detach himself from his own body as if it were not his. The only goal or aim he now has is to break the shackles of the vicious cycle of life and death. The person who commits suicide has to bear the consequences, however painful or bad. On the contrary a person (with) salenkhna is sure to have the heavenly abode and pleasure as well.

observing
the vow of

विषादिनाऽङ्गक्षतिमाञ्जघन्यः स आत्मघाती पुनरेति धन्यः ।

देहे विरुद्धेऽमुमुदारतातः संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः ॥ 4 ॥

अन्वयार्थ : [विषादिना] विषादी आत्मा के द्वारा [अङ्गक्षतिमान्] जो शरीर को नष्ट किया है [सः] वह [आत्मघाती] आत्मघाती [जघन्यः] अधम है [पुनः] किन्तु [देहे विरुद्धे] देह के विरुद्ध होने पर [अमुं] इस देह को [उदारतातः] उदारता से [एति] ले जाता है [धन्यः] वह धन्य है [एषः] यह [संन्यासः] संन्यास [किम्] क्या [आत्मघातः] आत्मघात [अस्तु] होवे?

भावार्थ : जो विषादभाव से, खेद खिन्नता से, परेशान होकर अपने शरीर को नष्ट करनेवाला हुआ है, वह आत्मघाती है। ऐसा मनुष्य तो निकृष्ट है। इसके विपरीत देह में रोग आदि होने के कारण, अशक्य प्रतीकार के योग्य होने के कारण जिसकी देह विरुद्ध हो गयी है, जिसका शरीर अब आत्मा का साथ नहीं दे रहा है, जिसका शरीर औषध, पथ्य सेवन से भी और अधिक रुग्ण होता जा रहा है, जो देह खिलाने-पिलाने के लायक नहीं रही है, ऐसी विरुद्ध देह को भी उदारता के साथ अर्थात् उसका शीघ्र नाश न करके, अपकार न सहते हुए धीरे-धीरे उसे मृत्यु तक ले जाता है वह आत्मा धन्य है। वस्तुतः संन्यास अर्थात् सं- समीचीन रूप से देह का न्यास करना, रख देना ही सल्लेखना है। क्या ऐसा संन्यास या सल्लेखना आत्मघात कहता सकता है? अर्थात् नहीं कहता सकता है।

The person who kills himself due to worldly pain, sorrow, disappointment or hurt is considered to be a man of low cadre, an unscrupulous man. On the contrary if someone is seriously ill, suffering from a mortal disease, or has lost all his physiological abilities to survive, medically declared to be unrecoverable, the body is not getting along

with the soul, and in such condition the person does not request death on wish, rather than treats the body as a separate entity and soul as himself than he or she is considered to be a revered soul. As a matter of fact, sanyaas or sanlekhna is a complete surrender of the body by detaching it from the soul. Can we term this divine practice as suicide?? No we can not. *can't*

संन्यासिना रत्नकरण्डकस्येवाङ्गस्य रक्षा क्रियते स्ववश्ये ।

नो चेत्तु रत्नान्यभिरक्षतातः संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः ॥ 5 ॥

अन्वयार्थ : [संन्यासिना] संन्यासी के द्वारा [रत्नकरण्डकस्य] रत्नों के पिटारे के [इव] समान [अङ्गस्य] शरीर की [रक्षा] रक्षा [क्रियते] की जाती है [नो चेत्तु] नहीं तो [स्ववश्ये] अपने आपको वश में कर लेने पर [रत्नानि] रत्नों की [अभिरक्षता] अभिरक्षा करने वाला वह होता है [अतः] इसलिए [एषः] यह [संन्यासः] संन्यास [किम्] क्या [आत्म-घातः] आत्मघात [अस्तु] होगा ?

भावार्थ : जैसे कोई रत्नों की रक्षा करनेवाला पुरुष उस पिटारे की भी रक्षा करता है, जिसमें वह रत्न रखे हैं, वैसे ही रत्नत्रय को आत्मा में धारण करनेवाला संन्यासी उस देह की भी रक्षा करता है, जिसमें यह आत्मा रहता है । यदि कदाचित् पिटारे में आग लग जाए, तो वह पुरुष उस पिटारे के मोह को छोड़कर रत्नों की रक्षा अवश्य करता है । उसी प्रकार देह जब संन्यासी के अपने वश में रहती है तब तक उस देह की रक्षा करता है । यदि देह अपने वश में न रहे तो अपनी आत्मा को वश में कर लेता है । ऐसा करने से वह देह के मोह को जीतकर जितेन्द्रिय बन जाता है । उस समय उसका उद्देश्य आत्मा के रत्नत्रय की रक्षा करना हो जाता है । रत्नत्रय की रक्षा करने के लिए शरीर की ममता त्याग देना ही समाधि या सल्लेखना है । इसी का नाम संन्यास है । यह आत्मघात नहीं है । आत्मघाती देह को अभिप्रायपूर्वक नष्ट करता है किन्तु संन्यासी देह को किसी कारणवश नष्ट

होता हुआ देखकर उससे अपना मोह हटाकर आत्मवान् बन जाता है, इसलिए संन्यास आत्मघात नहीं है।

carefully Suppose a man is blessed with a box of gems, How he protects the Box and the gems inside it. Similarly, The wise men quote that a sādhu or sanyasi protects the body for the soul inside . In case the box of gems catch fire, the man would try protecting the gems and let go of the box. In the same manner , a man when feels that the divine soul inside the body is fine he would take care of body but if he has to choose between body and soul , he sure would choose the soul. This is how he becomes the conqueror of senses and known as Jitendriya. In such moment he become ^s ^a sa man with the sole objective of protecting the gem like soul. The desire to protect the soul and let go of the body is called sanlekhna. This is termed rightly a sanyas. ^{renunciation?} This is no way suicide. ^{why?} (A man with suicide in mind does it for some reason but a sanyasi when comes to know that the body is no long ^{or} healthy and fit to continue, or the body is at a stage of no recovery, [?] (Then sanyasi) develops control on his wits and decides to detach the soul from the perishing body with full heart. This sure can not be termed as suicide.

शाकाशनीशाकविधाऽपलापे प्रवर्तते किन्नुपलेऽपि पापे ?

म्रियेत धैर्येण न निम्नतातः संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः ॥ 6 ॥

अन्वयार्थ : [शाकाशनीशाकविधाऽपलापे] शक्ति, बिजली, हलदण्ड, भी [पापे] पाप में [किन्नु] क्या निःसन्देह [प्रवर्तते] करता है जहाँ [धैर्येण] धैर्य के साथ [म्रियते] मरा जाता है [निम्नतातः] निम्नता से [न] नहीं [एषः] यह

[संन्यास] संन्यास [किम्] क्या [आत्मघातः] आत्मघात [अस्तु] हो ?

भावार्थ— आत्महत्या करने वाला जीव अपने को किसी तलवार आदि शक्ति से मारता है। बिजली या अग्नि से जलकर मरता है। गाड़ी के पहिए के नीचे आकर आत्मघात करता है और भी अन्य दुःख की विधि को अपनाकर मरण करता है। पत्थर पर गिरकर मरण करता है। निःसन्देह ऐसा प्राणी पाप में प्रवृत्ति करता है। आत्मघात करने वाला छोटे-छोटे निम्न कारणों से निम्न तरीके से मरण करता है। संन्यास धारण करने वाला धैर्य के साथ विधिपूर्वक अपने प्राण छोड़ता है। आत्मघात हड़बड़ाहट में अविवेक के साथ किया जाता है। इसलिए संन्यास की विधि तो अलग है, वह आत्मघात कैसे हो सकता है ?

6. A man with a mission to take his life would use a sword to kill himself or may jump from a tall building. *He*
would Even *(would)* lay down on the rails or jump in the ocean. *railway track*
He could hang himself to death or shoot. *himself* All these *x* ways are surely very torturous, violent and very *Extra* cruel. A man with suicide in mind would have all these feelings. *On* ON the contrarary, a man who has decided to take sanyas or sanlekhna, gives away the body in a disciplined, calculated and gradual process. How these two processes could be mistaken as a *like?* It sure is not. *can't be?*
स्वसंविदः संवहनं विधानेऽपि श्लाघ्यतामेति किलानुजाने ।
यो गीयते योगिषु संहितातः संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः ॥ 7 ॥

अन्वयार्थ : [विधानेऽपि] सल्लेखना समय पर भी [स्वसंविदः] स्वात्मज्ञानी का [संवहनं] समीचीन रूप से धारण करना [श्लाघ्यतां एति] प्रशंसा को प्राप्त होता है [किल] निश्चित ही [अनुजाने] मैं ऐसा मानता हूँ [यो] जो संन्यास [संहितातः] जिनवाणी के अनुसार [योगिषु] योगियों को [गीयते] कहा जाता है [एषः] ऐसा यह [संन्यासः] संन्यासमरण [किम्] क्या [आत्मघातः] आत्मघात [अस्तु] होवे ?

भावार्थ : सल्लेखना मरण के विधान में आत्मा का स्वसंवेदन होता है। यह संवेदन बड़ा ही अद्भुत होता है। ऐसा आत्मसंवेदन धारण करने वाला आत्मा निश्चित ही योगियों से प्रशंसित होता है। आचार संहिता के अनुसार सल्लेखनामरण की विधि बहुत विस्तृत है। एक क्षपक की [आराधक की] समाधि में 48 मुनिराज की आवश्यकता होती है। इतना बृहद् सम्यक् विधान भगवती आराधना आदि ग्रन्थों में योगियों के लिए कहा है। यह सल्लेखना मरण की विधि है। क्या ऐसी कोई शास्त्रोक्त विधि आत्मघात की होती है? ऐसी स्थिति में यह संन्यास क्या आत्मघात हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता है।

In the process of sanlekhna, there is a bonding of soul and emotions. It's mesmerizing to feel the overwhelming feel a person who has taken sanlekhna has. As per the code of conduct in order to take sanlekhna, there should be at least 40 hermits ^{saints} in the group, According to the religious scriptures (Bhagwati Aaradhna) it is said [?] that it's a massive process with a written code of conduct in the presence of a group of hermits. How can such process which is considered to be so holy, compared to something as bad as suicide. ^{can be}

यत्रात्महन्त्रे घृणया धिगस्तु संन्यासिने किन्तु नमोऽङ्गिनस्तु।

सर्वत्र नित्यं मृदुभावनातः संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः ॥ 8 ॥

अन्वयार्थ : [घृणया] घृणा से [यत्र] जहाँ [आत्महन्त्रे] आत्मघाती के लिए [धिग् अस्तु] धिक्कार हो [किन्तु] किन्तु [सर्वत्र] सब जगह [नित्यं] हमेशा [मृदुभावनातः] मृदुभावना से [अङ्गिनः] प्राणी का [संन्यासिने] संन्यासी के लिए [तु] निश्चित ही [नमः] नमस्कार हो [एषः] यह [संन्यासः] संन्यास [किम्] क्या [आत्मघातः] आत्मघात [अस्तु] हो सकता है?

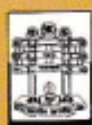
भावार्थ : आत्मघात करनेवाला जीव अपने जीवन को घृणा से देखता है।

वह प्राणी आत्मग्लानि से जब भर जाता है तो वह आत्मघात करता है। इसके विपरीत संन्यास धारण करनेवाला अत्यन्त मृदु भावना से सल्लेखना अङ्गीकार करता है। वह देह के प्रति उदासीन हो जाता है। संन्यास धारण करनेवाला आत्मग्लानि से नहीं किन्तु उत्तम मार्दव धर्म आदि आत्मशान्ति के भावों से भरा होता है। ऐसी समाधि की आराधना करनेवाला आत्मा जहाँ कहीं हो, उनके लिए हमेशा मेरा नमस्कार है। संन्यास इस तरह आत्मघात से भिन्न है। यह संन्यास क्या आत्मघात हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता है।

A man with the intent of suicide ^{to commit} hates himself and the world or is a victim of self pity. When he cannot take it anymore he decides to take away his life forcefully using some cruel or violent means. Contradictory to this, a man who is looking for sanlekhna has a very peaceful and calm mind set up. He knows that ^{entity the} Body is perishable and soul is the only permanent feature. He detaches himself from the body and starts dwelling in the soul. He is the man with firm will, controlled senses, peace and serenity. We bow down to such divine soul.

To conclude ^I would like to say that sanyas and suicide are two stark opposite thoughts and would advocate that we need to understand the difference between the two.

...



भारतीय ज्ञानपीठ

18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली - 110 003

संस्थापक : स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन, स्व. श्रीमती रमा जैन